श्रवन कुमार और अन्य

बनाम

मदन लाल अग्रवाल

6 फरवरी, 2003

[सैयद शाह मोहम्मद कादरी व अशोक भान, जे.जे.]

किराया नियंत्रण और बेदखली:

दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958-धारा 14 और 50- दीवानी अदालत द्वारा वाणिज्यिक किरायेदारी को बेदखल करने की डिक्री-उच्चतम न्यायालय के बाद के निर्णय ने वाणिज्यिक किरायेदारी को वंशानुगत घोषित किया-इस प्रकार दीवानी न्यायालय के पास इस तरह की डिक्री को पारित करने का अधिकार क्षेत्र नहीं था-हालांकि निष्पादन न्यायालय और उच्च न्यायालय की डिक्री को अंतिम रूप प्राप्त करने के बाद इसे शून्य घोषित नहीं किया जा सकता था-अपील में, यह अभिनिर्धारित किया कि बिना अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अमान्य होगी व निष्पादन योग्य नहीं होगी। डिक्री के निष्पादन पर आपत्ति डिक्री के निष्पादन के चरण पर या कोई अन्य संपार्श्विक कार्यवाही के दौरान लागू किए जाने की मांग के दौरान की जा सकती है।

न्यायिक प्रक्रिया-कानून की व्याख्या-इसकी पूर्वव्यापीता-जब न्यायालय यह निर्णय लेता है कि किसी विशेष प्रावधान को पहले दी गई व्याख्या कानूनी नहीं थी, तो वह कानून को शुरू से ही सही घोषित करता है इसलिए यह पूर्वव्यापी है।

सिद्धांतः

"संभावित अधिमूल्यांकन" के सिद्धांत-प्रयोज्यता-पर चर्चा की गई।

वाद परिसर को अपीलकर्ताओ के पूर्ववर्ती हितधारकों को वाणिज्यिक उपयोग के लिए मासिक किराए पर दिया गया था। प्रत्यर्थी-मकान मालिक ने कब्जा और अपने लाभ के लिए मुकदमा दायर किया। एकतरफा डिक्री पारित की गई। अपीलकर्ता व मद्यून द्वारा धारा 47 सीपीसी के तहत इस आधार पर आपत्तियां दायर कीं कि दिल्ली राज्य में ज्ञान देवी आनंद के मामले में इस अदालत द्वारा घोषित कानून के अनुसार वाणिज्यिक किरायेदारी वंशानुगत थी उत्तराधिकार के सामान्य कानून के तहत कानूनी उत्तराधिकारियों को हस्तांतरित होगी और इसलिए, दीवानी न्यायालय के पास इस तरह की डिक्री पारित करने के लिए अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का अभाव था; और यह कि वैधानिक किरायेदार की मृत्यु के बाद मद्यून का कब्जा गैरकानूनी और अवैध नहीं हुआ और उनके पास संपत्ति किराए के परिसर की बनी रही। न्यायालय ने आपत्तियों को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि वह उस डिक्री से आगे नहीं जा सकता है जिसने अंतिमता प्राप्त

कर ली है और सिविल कोर्ट द्वारा पारित डिक्री को निष्पादित करने से भी इनकार नहीं किया जा सकता क्योंकि ज्ञान देवी आनंद के मामले में इस न्यायालय ने बाद में माना कि वाणिज्यिक किरायेदारी वंशानुगत थी। पीड़ित अपीलार्थियों ने एक रिट याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने निष्पादन अदालत के आदेश को बरकरार रखा। अतः यह वर्तमान अपील।

अपीलार्थी ने तर्क दिया कि यह न्यायालय कानून नहीं बनाता है और केवल कानून की व्याख्या करता है और जब किसी विशेष प्रावधान की व्याख्या की जाती है तो यह प्रभावी रूप से कानून घोषित करता है जैसे कि यह उसके निर्णय के अनुसार शुरू से ही कायम है और यह माना जाएगा जैसे कि वह कानून था; यह न्यायालय के लिए खुला है कि वह नियम को भावी रूप से लागू करने के पहले के निर्णय को सुरक्षित करे और उन निर्णयों को बचाए रखें जो पहले ही अंतिम हो चुके हैं या प्रभावी हो चुके हैं; और इस आशय की किसी विशिष्ट टिप्पणियों के अभाव में कि ज्ञान देवी आनंद के मामले में घोषित कानून भावी रूप से लागू होगा और दीवानी न्यायालयों द्वारा पहले से पारित डिक्री पर लागू नहीं होगा, यह नहीं माना जा सकता है कि ज्ञान देवी में निर्धारित नियम उन डिक्री पर लागू नहीं होगा जो दीवानी न्यायालय द्वारा पारित किए गए थे, जिनके पास ऐसा करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था।

प्रतिवादी ने तर्क दिया कि ज्ञान देवी आनंद का मामला भावी रूप से होगा और उस डिक्री पर लागू नहीं होगा जो ज्ञान देवी आनंद के मामले में फैसले से पहले पारित की गयी थी।

न्यायालय द्वारा अपील की अनुमति देते हुए, अभिनिर्धारित किया गया :-

1.1 "संभावित अतिनिर्णय" का सिद्धांत शुरू में संविधान के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों पर लागू किया गया था लेकिन यह समझा जाता है कि इस अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों पर भी लागू किया गया है। "संभावित अतिनिर्णय" के सिद्धांत के तहत न्यायालय द्वारा घोषित कानून केवल भविष्य में उत्पन्न होने वाले मामलों पर लागू होता है और उन मामलों पर इसकी प्रयोजिता को बचाया जा सकता है जो अंतिम परिणाम प्राप्त कर चुके हैं क्योंकि निरसन अन्यथा उन लोगों के लिए कठिनाई पैदा करेगा जिन्होंने इसके अस्तित्व पर भरोसा किया था। "संभावित अतिनिर्णय" के सिद्धांत का आह्वान न्यायालय के समक्ष प्रकरण या प्रकरण के न्याय के अनुरूप ढलने के लिए न्यायालय के विवेक पर छोड दिया गया है। इस न्यायालय ने ज्ञान देवी आनंद के मामले का फैसला करते समय यह नहीं माना कि उसके द्वारा घोषित कानून भावी रूप से प्रभावी होगा। इसने कोई नया कानून निर्धारित नहीं किया, बल्कि केवल मौजूदा कानून की व्याख्या की जो पहले से लागू था। जब न्यायालय यह

निर्णय लेता है कि किसी विशेष प्रावधान की पहले दी गई व्याख्या कानूनी नहीं थी, तो वह कानून को उसी रूप में घोषित कर देता है जैसा वह प्रारम्भ से ही अपने निर्णय के अनुसार था। ज्ञान देवी आनंद के मामले में उच्च न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या कि वाणिज्यिक किरायेदारी वंशानुगत नहीं थी, गलत होने के कारण खारिज कर दी गई थी। उच्च न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या वैधानिक नहीं थी। इस न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या जो यह घोषित करती है कि वाणिज्यिक किरायेदारियां वंशानुगत हैं, यह कानून होगा क्योंकि इस न्यायालय द्वारा दी गयी व्याख्या के अनुसार शुरू से ही कायम है। यह माना जावेगा कि कानून कभी भी अन्यथा नहीं था। इस न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या से दीवानी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को नहीं छीना गया है। यह इस न्यायालय द्वारा इस आशय की कानूनी की घोषणा थी कि दीवानी न्यायालय के पास इस तरह की डिक्री पारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। यह अधिकार क्षेत्र को छीनने का सवाल नहीं था; यह इस न्यायालय द्वारा उस प्रभाव के लिए कानून की घोषणा थी। सिविल न्यायालय ने ज्ञान देवी आनंद के मामले में उच्च न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या के आधार पर क्षेत्राधिकार को स्वीकार किया गया जिसे इस न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया था।[928- एफ, जी, एच; 929-ए, बी; 932-सी, डी, ई]

1.2 वर्तमान मामले में दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958 की धारा 14 के लागू होने के कारण, किराएदार परिसर को बेदखल करने

की डिक्री पारित करने का क्षेत्राधिकार प्राधिकारी अधिनियम के तहत नियुक्त किराया नियत्रंक को है व अधिनियम की धारा 50 के तहत विशेष रूप से सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को दिल्ली किराया नियत्रंण अधिनियम के तहत किसी भी किराएदार की बेदखली से संबंधित मुकदमे या कार्यवाही पर विचार करने से प्रतिबंधित करती है। सिविल न्यायालय के पास प्रकरण का संज्ञान लेने व डिक्री पारित करने के लिए अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का अभाव था। शून्यता के आधार पर इस तरह की डिक्री को निष्पादन कार्यवाही सहित किसी भी वाद के चरण पर चुनौती दी जा सकती है। भवन की किरायेदारी एक विशेष अधिनियम द्वारा शासित थी और इसलिए, सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अमान्य थी और इसलिए, निष्पादन योग्य नहीं थी। निष्पादन न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की कि निर्णय-देनदार डिक्री की निष्पादन क्षमता पर आपत्ति नहीं उठा सकते थे, क्योंकि डिक्री अंतर्निहित क्षेत्राधिकार की कमी वाले न्यायालय द्वारा पारित की गयी थी, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था। इस प्रकार उच्च न्यायालय के साथ-साथ निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश को दरकिनार किया जाता है। बेदखली की डिक्री पारित करने की सिविल न्यायालय की अधिकारिता पर रोक लगा दी गई। इसलिए, किसी ऐसे न्यायालय द्वारा पारित डिक्री जिसका कोई विषय वस्तु पर क्षेत्राधिकार नहीं है अमान्य होगी और निर्णय-देनदार ऐसीडिक्री के निष्पादन को अमान्य और नॉन एस्ट होने के आधार पर आपत्ति कर सकता है।

इसकी अमान्यता तब स्थापित की जा सकती है जब उसे डिक्री के निष्पादन के चरण या किसी अन्य संपार्श्विक कार्यवाही सहित लागू करने की मांग की जाती है। इस तथ्य के प्रति सचेत हैं कि यह प्रतिवादी-डिक्री धारक पर एक बड़ी कठिनाई होगी, जो सभी चरणों में जीतने के बाद भी अपने पक्ष में पारित डिक्री का लाभ नहीं उठा पाएगा, लेकिन कानून की अनियमितताओं से मदद नहीं मिल सकती है।इस प्रकार, डिक्री धारक द्वारा प्राप्त डिक्री को अमान्य और नॉन एस्ट होने के कारण निष्पादित नहीं किया जा सकता है।[931- ई, एफ, जी; 932-एफ, जी, एच; 933-ए]

ज्ञान देवी आनंद बनाम जीवन कुमार, [1985] सप 1 एससीआर 1 *; ज्ञान देवी आनंद बनाम जीवन कुमार, [1980]17 डी. एल. टी. 197; भारमप्पा नेमन्ना कवाले वगै. बनाम डोंडी भीमा पाटिल और अन्य [1996] 8 एस.सी.सी.243; डॉ. सुरेश चंद्र वर्मा वगै. बनाम कुलाधिपति, नागपुर विश्वविद्यालय वगै., [1990] 4 एस.सी.सी. 55; लिली थॉमस वगै. बनाम भारत संघ वगै. [2000] 6 एस.सी.सी.224; सरला मुद्गल (श्रीमती) अध्यक्ष कल्याणी वगै. बनाम भारत संघ वगै. [1995] 3 एस.सी.सी. 635; गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. [1967] एस.सी.1643; सुशील कुमार मेहता बनाम गोविंद राम बोहर, [1990] 1 एस.सी.सी. 193 व अर्बन इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट बनाम गोकुल नारायण, [1996] 4 एस.सी.सी. 178, का उल्लेख किया गया है।

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 1058/2003

दिल्ली उच्च न्यायालय,के सी.एम. 642/2000 में पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 17.9.2001 से

एम.एल.वर्मा,सुधीर नंदराजोग और विरेंद्र रावत अपीलार्थियों की ओर से।

एस. के. मिश्रा, के. के. पठानिया, शैल कुमार द्विवेदी और पी. सेनगुप्ता प्रतिवादी की ओर से

न्यायालय का निर्णय न्यायधीश भान,जे. द्वारा पारित किया गया :-

अनुमति स्वीकृत।

इस अपील में निर्धारण के लिए जो संक्षिप्त बिंदु आता है वह हैः क्या सिविल कोर्ट द्वारा दिल्ली राज्य में वाणिज्यिक किरायेदारी बाबत् पारित बेदखली की डिक्री सुप्रीम कोर्ट द्वारा ज्ञान देवी आनंद बनाम जीवन कुमार [1985] पूरक 1 एस.सी.आर. 1 मामले में ऐसीकिरायेदारी के वंशानुगत होने के कानून की घोषणा से पूर्व, decree निष्पादन योग्य है या मदयून इस आधार पर डिक्री के निष्पादन पर सफलतापूर्वक आपत्ति कर सकते हैं कि इसे अंतर्निहित क्षेत्राधिकार की कमी वाले न्यायालय द्वारा पारित किया गया था और इसलिए यह निष्पादन योग्य नहीं है?

संपत्ति संख्या 212/IX, चावड़ी बाजार दिल्ली का स्वामित्व श्रीमती सरला देवी, प्रत्यर्थी-मकान मालिक की पत्नी (इसके बाद "डिक्री धारक" के

रूप में संदर्भित) के पास था। उन्होंने 1969 में वाद परिसर को 75/-रूपये के मासिक किराए पर स्वर्गीय श्री अमरनाथ, पूर्ववर्तीहित अपीलार्थी (इसके बाद "मदयून" के रूप में संदर्भित), पर दिया था। श्रीमती सरला देवी का निधन 28 जनवरी, 1980 को हुआ। उन्होंने डिक्री धारक के पक्ष में 25 अप्रैल, 1979 की एक वसीयत निष्पादित की थी। डिक्री-धारक ने 1980 का प्रोबेट केस संख्या 41 दायर करके प्रशासन का पत्र प्राप्त किया। उसके पक्ष में दिए गए प्रोबेट के आधार पर डिक्री-धारक सूट परिसर का मालिक बन गया।

डिक्री-धारक ने स्वर्गीय श्री अमरनाथ को संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 के तहत पद छोड़ने का नोटिस दिया। पद छोडने के नोटिस के जवाब में अमर नाथ ने कहा कि वह अपनी व्यक्तिगत हैसियत से किरायेदार नहीं थे और किरायेदार परिसर में किरायेदार एक साझेदारी फर्म मेसर्स पेलिकन पेपर एंड स्टेशनरी मार्ट की थी जिसमें वह भागीदारों में से एक थे। अमर नाथ की मृत्यु 27 जनवरी, 1982 को हो गयी थी। डिक्री-धारक ने जिला न्यायाधीश, दिल्ली की अदालत में मदयून के खिलाफ कब्जे और मेस्ने मुनाफे के लिए एक मुकदमा दायर किया, जिसमें कहा कि अमर नाथ अपने व्यक्तिगत रूप से मुकदमे के परिसर में किरायेदार थे। यह तर्क दिया गया कि मूल किरायेदार के कानूनी उत्तराधिकारी होने के कारण मदयून के पक्ष में किरायेदारी वंशानुगत नहीं थी। मदयून की व्यक्तिगत रूप से तामील नहीं हुयी थी। फरवरी, 1985 में

समाचार पत्र में प्रकाशन के माध्यम से उन पर तामील प्रभावित हुई थी। उनके खिलाफ एकमुश्त लाभ के कब्जे/वसूली की एक एकतरफा डिक्री पारित की गयी थी। दीवानी अदालत ने एक निष्कर्ष दर्ज किया कि किरायेदारी की समाप्ति के बाद अमर नाथ वैधानिक किरायेदार बन गए और उनकी मृत्यु पर किरायेदारी समाप्त हो गई और तदनुसार बकाया किराये के नुकसान के साथ वाद परिसर के कब्जे के लिए एक डिक्री पारित की गई।

इसके बाद, 1 जुलाई, 1985 को डिक्री-धारक ने निष्पादन आवेदन दायर किया। 21 अगस्त, 1986 के फैसले पर- मदयून ने एकतरफा डिक्री को रदद करने के लिए आदेश 9 नियम 13 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसे विचारण न्यायालय ने 25 जनवरी, 1993 को खारिज कर दिया था। मदयून ने विचारण न्यायालय के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय में नियमित रूप से प्रथम अपील दायर की। विचारण न्यायालय के फैसले पर 26 जुलाई, 1995 को उच्च न्यायालय ने निष्पादन याचिका की कार्यवाही पर रोक लगा दी। 7 सितंबर, 1998 को फैसले द्वारा दायर अपील-मदयून यालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसके बाद निर्णय-देनदारों ने 1998 की विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 20667 दायर की। इसे खारिज कर दिया गया था और मदयून के लिए उपयुक्त मंच के समक्ष डिक्री की निष्पादन क्षमता के बारे में सवाल उठाने का अधिकार खुला छोड़ दिया गया था। निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था।

"याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश विद्वान वकील ने आग्रह किया कि चूंकि याचिकाकर्ता संरक्षित किरायेदार है, इसलिए न तो बेदखली के लिए कोई डिक्री पारित की जा सकती है न ही उनके खिलाफ ऐसी डिक्री को निष्पादित किया जा सकता है। हम इस प्रश्न पर जाने के इच्छुक नहीं हैं क्योंकि यह अपील की विषय वस्तु नहीं है। विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी जाती है। याचिकाकर्ताओ के लिए यह खुला है कि वे इस आधार को उचित मंच के समक्ष उठा सकते हैं, यदि कानून के तहत उनके पास उपलब्ध है।

विशेष अनुमति याचिका खारिज होने के तुरंत बाद, मदयून ने सिविल कोर्ट द्वारा पारित मूल डिक्री दिनांक 2 अप्रैल, 1985 के खिलाफ उच्च न्यायालय में नियमित प्रथम अपील संख्या 39/2000 15 वर्ष की देरी से अपील दायर करने को माफ किये जाने के आवेदन के साथ दायर की। देरी की माफी के लिए अंतरिम आवेदन को खारिज कर दिया गया और परिणामस्वरूप नियमित प्रथम अपील संख्या 39 सन् 2000 को समय बाधित होने के कारण 24 जनवरी, 2000 को खारिज कर दिया गया।

इस न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति याचिका खारिज होने के बाद निष्पादन की कार्यवाही फिर से शुरू हुई। निर्णय-देनदारों ने सिविल प्रक्रिया संहिता (सी.पी.सी.) की धारा 47 के तहत अपनी आपत्तियां दर्ज कीं, जिसमें

अन्य बातों के साथ साथ डिक्री के निष्पादन पर आपत्ति इस आधार पर जताई गई कि दिल्ली राज्य में इस न्यायालय द्वारा जियान देवी आनंद के मामले में (सुप्रा) यह अभिनिर्धारित किया था कि वाणिज्यिक किरायेदारी घोषित कानून के मद्देनजर वंशानुगत थी। जिसके चलते सिविल कोर्ट के पास इस तरह की डिक्री पारित करने के लिए अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का अभाव था। वैधानिक किरायेदार की मृत्यु के बाद निर्णय-देनदारों का कब्जा गैरकानूनी और अवैध नहीं हुआ। उनके पास किराये के परिसर में संपत्ति बनी रही जो विरासत में मिली थी और दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958(इसके बाद"अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 50 के तहत बेदखली का आदेश पारित करने के लिए सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगा दी गयी थी। अधिनियम के तहत व्यावसायिक परिसरों के किरायेदारी अधिकार, जो विरासत में मिले थे, उत्तराधिकार के सामान्य कानून के तहत कानूनी उत्तराधिकारियों को हस्तांतरित हो जाएंगे।

निष्पादन न्यायालय ने मदयून द्वारा दायर की गई आपत्तियों को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि निष्पादन न्यायालय उस डिक्री से आगे नहीं जा सकता है जिसने अंतिम निर्णय प्राप्त कर लिया था। निष्पादन अदालत सिविल कोर्ट द्वारा पारित डिक्री को निष्पादित करने से इंकार नहीं कर सकती थी क्योंकि बाद में जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि वाणिज्यिक किरायेदारी वंशानुगत है। अपीलकर्ताओ ने व्यथित होकर डिक्री के निष्पादन पर अपनी आपत्तियों को खारिज करने

के खिलाफ भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून की प्रयोज्यता के संबंध में और भरमप्पा नेमन्ना कावले और अन्य बनाम धोंडी भीमा पाटिल और अन्य, [1996] 8 एससीसी 243 में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुये समान दृष्टिकोण अपनाया। उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दीः

> "ऐसे मामलों में, भावी/पूर्वव्यापी अधिनिर्णय के सिद्धांत को पुनर्निर्णय के सिद्धांत को स्थान देना होगा और जब भी किसी मामले का अंतिम निर्णय हो जाता है तो डिक्री को केवल इसलिए अमान्य घोषित नहीं किया जा सकता है क्योंकि बाद के निर्णय द्वारा यह स्पष्ट किया गया था कि सिविल कोर्ट का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था और मामले की सुनवाई किराया नियंत्रक द्वारा की जानी चाहिए थी।"

दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा जियान देवी आनंद बनाम जीवन कुमार मामले 1980(17) डी.एल.टी.197 में, जो जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष अपील में था, मे यह विचार किया कि वाणिज्यिक किरायेदारी वंशानुगत नहीं थी और इसलिए इस पर मूल किरायेदार की मृत्यु होने पर संविदात्मक किरायेदारी समाप्त हो जाती है और किराया अधिनियम के तहत वैधानिक किरायेदार को दी जाने वाली

सुरक्षा वैधानिक किरायेदार के उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों को उपलब्ध नहीं होती है। दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ की गई अपील में, इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को खारिज कर दिया और दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958 के संबंधित प्रावधानों काे अधिनियम 18 के 1976 द्वारा संशोधन से पहले और बाद में व्यापक रूप से संदर्भित किया यह दृष्टिकोण अपनायाः

> "तदनुसार, हमारा मानना है कि यदि विचाराधीन किराया अधिनियम वास्तव में एक किरायेदार को परिभाषित करता है, तो इसका मतलब एक किरायेदार है जो संविदात्मक किरायेदारी की समाप्ति के बाद भी कब्जे में बना रहता है जब तक कि उसके खिलाफ बेदखली का डिक्री पारित नहीं हो जाती, तब तक किरायेदार किरायेदारी का निर्धारण किरायेदारी परिसर में एक संपति या हित जारी रखता है और आवासीय परिसर और वाणिज्यिक परिसर दोनों के संबंध में किरायेदारी अधिकार वंशानुगत है। किराया अधिनियम में ऐसेप्रावधान के विपरीत के अभाव में मृत किरायेदार के उत्तराधिकारी मृतक किरायेदार की स्थिति में कदम रखेगा और मृत किरायेदार के उत्तराधिकारी को मृतक किरायेदार के सभी अधिकार और दायित्व, जिसमें

अधिनियम के तहत मृत किरायेदार को दी गयी सुरक्षा भी शामिल है, हस्तांतरित हो जाएंगे..."

इस सवाल पर कि किरायेदारी का अधिकार किसके पास होगा, यह देखा गयाः

" .....उत्तराधिकार के अधिकार, उसके तरीके और सीमा को विनियमित करने वाले किसी प्रावधान के अभाव में और किसी की मृत्यु पर उत्तराधिकारियों को किरायेदारी अधिकारों के हस्तांतरण के संबंध में निर्धारित किसी भी शर्त के अभाव में किरायेदार, किरायेदारी अधिकारों का हस्तांतरण आवश्यक रूप से उत्तराधिकार के सामान्य कानून के अनुसार होना चाहिए।"

उसी निर्णय में इस न्यायालय ने कहा कि मकान मालिक किराया अधिनियम में अंतर्गत आने वाली संपत्तियों के किरायेदारों को केवल किराया अधिनियम में निर्दिष्ट आधार पर बेदखल करने की मांग कर सकता है।

हमारे सामने यह विवाद नहीं है कि जिस परिसर पर किराया अधिनियम लागू होता है, वहां से बेदखली का आदेश केवल किराया अधिनियम के तहत गठित अधिकारियों/किराया नियंत्रण द्वारा ही दिया जा सकता है और सिविल अदालतों के पास जिस परिसर पर किराया अधिनियम लागू होता है उन किरायेदारों को बेदखल करने के मुकदमों पर

विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। इसके अलावा, यह विवाद में नहीं है कि किरायेदार परिसर के मालिकों को चाहे आवासीय हो या वाणिज्यिक, किराया नियंत्रक द्वारा केवल किराया अधिनियम में निर्दिष्ट आधार पर किरायेदार को बेदखल करने की अनुमति है। प्रतिवादी-डिक्री धारक के वकील ने इस बात पर भी विवाद नहीं किया कि जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय द्वारा कानून की घोषणा के बाद (1 मई, 1985 को फैसला सुनाया गया था) सिविल कोर्ट द्वारा पारित कोई भी डिक्री गैर-होगी, जिसे ऐसेन्यायालय द्वारा पारित किया गया है जिसमें अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का अभाव है। लेकिन उनके अनुसार जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय द्वारा किये गये कानून की घोषणा से पहले पारित डिक्री पर यह नियम लागू नहीं होगा। उनके अनुसार ऐसेडिक्री, डिक्री पारित होने के समय सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा पारित होने के कारण वैध और कानूनी है और इसलिए निष्पादित होने में सक्षम हैं। जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में कानून की घोषणा से पहले पारित किए गए आदेश उस मामले में निर्धारित कानून के मद्देनजर प्रभावी और अनिष्पादन योग्य नहीं रहे। दूसरे शब्दों में, विवाद यह है कि जियान देवी आनंद का मामला (सुप्रा) पालना में भावी होगा और उस डिक्री पर लागू नहीं होगा जो जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के फैसले से पहले पारित कि गया था। इसके विपरीत, अपीलकर्ता के वकील ने डॉ. सुरेश चंद्र वर्मा और अन्य बनाम

चांसलर, नागपुर विश्वविद्यालय और अन्य, [1990] 4 एससीसी 55, व लिली थॉमस और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, [2000] 6 एस.सी.सी. 224 मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया और तर्क दिया कि यह न्यायालय कानून नहीं बनाता है और केवल कानून की व्याख्या करता है और जब किसी विशेष प्रकार की व्याख्या की जाती है तो यह वास्तव में यह घोषित करता है वह कानून शुरू से ही कायम है व इसके निर्णय के अनुसार ऐसा माना जाएगा जैसे कि यह कानून था। यह न्यायालय के लिए खुला है कि वह नियम को भावी रूप से लागू करने के पहले के निर्णय की सुरक्षा करे और उन निर्णयों को बचाए रखे जो पहले ही अंतिम हो चुके हैं या प्रभावी हो चुके हैं। इस आशय की किसी विशिष्ट टिप्पणी के अभाव में कि जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में घोषित कानून भावी रूप से प्रभावी होगा और सिविल अदालतों द्वारा पहले से पारित डिक्री पर लागू नहीं होगा, यह नहीं माना जा सकता है कि जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में पारित नियम सिविल न्यायालय, द्वारा पारित किए गए डिक्री पर लागू नहीं होगा। सिविल कोर्ट द्वारा ऐसा करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। डॉ. सुरेश चंद्र वर्मा और अन्य (सुप्रा) इस न्यायालय ने निर्धारित कियाः

> " दूसरे तर्क को हमें लंबे समय तक हिरासत में रखने की आवश्यकता नहीं है। यह मुख्य रूप से अधिनियम की धारा 57 (5) के प्रावधानों पर आधारित है। तर्क यह है कि चूंकि

उस धारा के प्रावधान कुलाधिपति को एक शिक्षक की सेवाएं समाप्त करने की शक्ति देते हैं केवल तब देते हैं यदि वह इस बात से संतुष्ट है कि नियुक्ति" उस समय लागू कानून के अनुसार नहीं थी" और चूंकि उस समय लागू कानून, यानी 30 मार्च, 1985 को जब अपीलार्थियों की नियुक्ति की गई थी, भाकरे मामले में निर्धारित प्रभावी था, जिसका फैसला 7 दिसंबर, 1984 को हुआ था, अपीलकर्ताओ की बर्खास्तगी कुलाधिपति की शक्तियों से परे है। तर्क को केवल निराधार के रूप में वर्णित किया जा सकता है। यह इंगित करना अनावश्यक है कि जब अदालत निर्णय लेती है कि किसी भी विशेष प्रावधान की व्याख्या जैसा कि पहले दिया गया है कानूनी नहीं थी, यह वास्तव में घोषित करता है कि कानून जैसा शुरू से था, वह उसके निर्णय के अनुसार था, और कानून कभी भी अन्यथा नहीं था। यह मामला होते हुए, चूंकि पूर्ण पीठ और अब इस न्यायालय ने यह मानते हुए कि भाकरे में डिवीजल बेंच द्वारा कानून के प्रावधानों पर की गयी व्याख्या गलत थी, यह मानना होगा कि भाकरे मामले में निर्धारित कानून के अनुसार 30 मार्च, 1985 को विश्वविद्यालय द्वारा की गयी नियुक्तियाँ कानून के मुताबिक नहीं थे। इसलिए, अपीलकर्ताओ की सेवाओ की समाप्ति

अधिनियम की धारा 57(5) के प्रावधनों के अनुपालन में थी।"

सरला मुद्गल (श्रीमती) अध्यक्ष, कल्याणी और अन्य बनाम भारत संघ और राज्य [1995] 3 एस.सी.सी. 635 में इस न्यायालय ने कानून के तहत पहली शादी को भंग किए बिना इस्लाम में रूपांतरण के बाद एक हिंदू पति की दूसरी शादी की वैधता पर विचार किया। यह माना गया कि ऐसा विवाह आईपीसी की धारा 494 के प्रावधानों के अनुसार शून्य होगा और पति आईपीसी की धारा 494 के तहत अपराध का दोषी होगा। यह निर्धारित किया गया:

" फैसले की शुरुआत में हमारे द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हुये, हमारा मानना है कि इस्लाम में धर्म परिवर्तन के बाद एक हिंदू पति की दूसरी शादी, कानून के तहत उसकी पहली शादी को खत्म किए बिना, अमान्य होगी, दूसरी शादी धारा 494 में के तहत अंकित शर्तो के मुताबिक शून्य होगी तथा धारा 494 भा.दं.सं.के प्रावधानों के तहत धर्मत्यागी-पति धारा 494 के तहत अपराध को दोषी होगा"

लिली थॉमस और अन्य (सुप्रा) में इस विवाद को कि सरला मुद्गल के मामले (सुप्रा) में घोषित कानून उन लोगों पर लागू नहीं किया जा

सकता, जिन्होंने फैसले की तारीख से पहले कानून के आदेश का उल्लंघन करके विवाह किया था, को खारिज करते हुए इस अदालत ने कहा:

> " हम इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं कि सरला मुद्गल मामले में घोषित कानून उन लोगों पर लागू नहीं किया जा सकता है जिन्होंने फैसले की तारीख से पहले कानून के आदेश का उल्लंघन करके विवाह किया है, को स्वीकार किया जावे। इस न्यायालय ने कोई कोई नये कानून को प्रतिपादित नहीं किया है बल्कि मौजूदा कानून की व्याख्या की है जो पहले से जो लागू था। यह एक स्थापित सिद्धांत है कि कानून के प्रावधान की व्याख्या कानून की तारीख से ही संबंधित होती है और फैसले की तारीख से भावी नहीं हो सकती है क्योंकि अदालत मानती है कि अदालत कानून नहीं बनाती बल्कि केवल मौजूदा कानून की व्याख्या करता है। हम इस तर्क से सहमत नहीं है कि एक धर्मांतरित पुरुष मुस्लिम द्वारा दूसरी शादी को केवल न्यायिक घोषणा द्वारा अपराध बना दिया गया है। फैसले में केवल मौजूदा कानून की व्याख्या फैसला सुनाने वाली पीठ के समक्ष विभिन्न पहलुओ पर विस्तार से बहस होने के आधार पर की गई है। संविधान के अनुच्छेद 20(1)के उल्लंघन का आरोप लगाने वाली समीक्षा

याचिका बिना किसी तथ्य के है और केवल इस आधार पर खारिज की जा सकती है।"

उच्च न्यायालय द्वारा भारमप्पा नेमन्ना कवाले के मामले (सुप्रा) पर भरोसा करते हुए संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत का आह्वान गलत है। भारमप्पा नेमन्ना कावले के मामले (सुप्रा) में सिविल कोर्ट ने किरायेदार के खिलाफ बेदखली की डिक्री यह कहते हुए पारित किया कि वह किरायेदार नहीं था, जो डिक्री अंतिम हो गई। जब मकान मालिक और किरायेदार के बीच न्यायिक संबंध की दलील को कार्यकारी अदालत ने खारिज कर दियाा, तो मकान मालिक ने उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की, जिसमें उच्च न्यायालय ने कार्यकारी अदालत को उस प्रश्न पर विचार करने का निर्देश दिया। इन तथ्यों पर इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को पलटते हुए कहाः

" प्रतिवादियों के विद्वान वकील श्री भास्मे ने तर्क दिया कि बॉम्बे टेनेंसी और कृषि भूमि अधिनियम, 1948 (1948 का 67) की धारा 85-ए में प्रयुक्त विशिष्ट भाषा को ध्यान में रखते हुए, एकमात्र सक्षम प्राधिकारी राजस्व प्राधिकारी है जो उक्त प्रश्न को निर्णित करेगा तथा सिविल कोर्ट के पास इस सवाल पर जाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है कि अपीलकर्ता किरायेदार है या नहीं। इसलिए, उच्च न्यायालय

ने कार्यकारी अदालत को इस सवाल पर जाने का निर्देश देकर सही किया था। बल्कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि प्रतिवादी ने यह डिक्री कि वह किराएदार नहीं है को अंतिम होने दिया। इसे अंतिम होने की अनुमति देने के उपरान्त उसके लिए यह तर्क देना खुला नहीं है कि वह अधिनियम के तहत अभी भी किरायेदार है और इसलिए डिक्री अमान्य है। उन परिस्थितियों में, डिक्री निष्पादित करने के लिए आपत्ति पर विचार करने से इनकार करने में निष्पादन न्यायालय सही था। इन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय का कार्यकारी अदालत को आपत्ति पर विचार करने का निर्देश देना उचित नहीं था।"

इस न्यायालय ने न तो संभावित अधिनिर्णय के सिद्धांत पर विचार किया और न ही बिना किसी अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के निष्पादन के प्रश्न पर विचार किया। इस अदालत ने उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को खारिज कर दिया क्योंकि किरायेदार ने पहले सिविल कोर्ट की इस आशय की डिक्री को अंतिम रूप दे दिया था कि वह किरायेदार नहीं था। इन परिस्थितियों में सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री पूर्णतः वैध थी। मकान मालिक और किरायेदार के न्यायिक संबंधों के प्रश्न पर कार्यकारी अदालत नए सिरे से

विचार नहीं कर सकती। यह एक संक्षिप्त निर्णय था और उक्त निर्णय में इस न्यायालय द्वारा किसी अन्य बिंदु पर विचार नहीं किया गया था।

गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य, एआईआर.डी.(1967) एस.सी. 1643 में इस न्यायालय ने पहली बार "संभावित ओवररूलिंग" के सिद्धांत को स्वीकार किया। ये हुआ थाः

> " चूंकि इस न्यायालय को पहली बार एक अलग देश में भिन्न परिस्थितियों में विकसित सिद्धांत को लागू करने के लिए बुलाया गया है, अतः हम शुरूआत में सावधानी से आगे बढाना चाहेंगे। हम निम्नलिखित प्रस्ताव रखेंगेः (1) संभावित आेवररूलिंग का सिद्धांत केवल हमारे संविधान के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों में ही लागू किया जा सकता है, (2) इसे केवल देश के सर्वोच्च अदालत, यानी सुप्रीम कोर्ट द्वारा ही लागू किया जा सकता है क्योंकि इसके पास भारत की सभी अदालतों पर कानून को बाध्यकारी घोषित करने का संवैधानिक क्षेत्राधिकार है, (3) सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपने "पहले के निर्णयों" को अधिक्रमित करते हुए घोषित कानून के पूर्वव्यापी संचालन का दायरा उसके विवेक पर छोड दिया गया है ताकि उसे उसके समक्ष कारण या मामले के न्याय के अनुसार ढाला जा सके।"

"संभावी ओवररूलिंग" का सिद्धांत शुरू में संविधान के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों पर ही लागू किया गया था, लेकिन हम समझते हैं कि इसे बाद में कानून के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों पर भी लागू किया गया है। "संभावित अधिनिर्णय" के सिद्धांत के तहत न्यायालय द्वारा घोषित कानून केवल भविष्य में उत्पन्न होने वाले मामलों पर लागू होता है और उन मामलों पर इसकी प्रयोज्यता को बचाया जाता है जो अंतिम परिणाम प्राप्त कर चुके हैं क्योंकि निरसन अन्यथा उन लोगों के लिए कठिनाई पैदा करेगा जिन्होंने इसके अस्तित्व पर भरोसा किया था। "संभावित ओवररूलिंग" के सिद्धांत के आह्वान को न्याय के अनुरूप ढलने के लिए न्यायालय के समक्ष लंबित मामले में अंकित कारण को न्यायालय के विवेक पर छोड दिया गया है। इस न्यायालय ने जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) का निर्णय लेते हुए यह नहीं माना कि न्यायालय द्वारा घोषित कानून भावी रूप से लागू होगा। यह कहना उच्च न्यायालय का काम नहीं था कि जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून भावी रूप से लागू होगा। यदि इसे स्वीकार किया जाना है तो जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) या किसी अन्य मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून की प्रयोज्यता के संबंध में विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा परस्पर विरोधी नियम निर्धारित किए जा सकते हैं। ऐसी स्थिति पैदा नहीं होने दी जा सकती है। इस न्यायालय द्वारा किसी भी निर्देश के अभाव में कि इस न्यायालय द्वारा जियान देवी आनंद के मामले

(सुप्रा) निर्धारित नियम का संचालन भावी रूप से लागू होगा, उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष कि इस न्यायालय द्वारा जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में निर्धारित नियम इस न्यायालय के निर्णय की तिथि से उत्पन्न होने वाले मामलों पर लागू होने को गलत होने के कारण स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

इस न्यायालय ने सुशील कुमार मेहता बनाम गोविंद राम बोहरा, [1990] 1एस.सी. सी.193 ने इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करने और उनका विस्तृत रूप से पालन करने के बाद माना कि किराए के मामले में एक सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री, जिसका अधिकार क्षेत्र हरियाणाा शहरी (किराया और बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1973 द्वारा वर्जित किया गया था, निष्कासन के लिए मुकदमे पर विचार करने के लिए अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र की कमी वाली अदालत द्वारा पारित किया जाना शून्यता थी और मदयून सफलतापूर्वक उक्त डिक्री के निष्पादन पर आपत्ति कर सकते थे।

उक्त मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से लगभग समान थे। उस मामले में निर्णय के लिए जिम्मेदार तथ्य इस प्रकार थे: मकान मालिक ने गुडगांव में किरायेदारी को दी गयी एक दुकान को बेदखल करने और बकाया किराया तथा उपयोग और कब्जे के लिए नुकसान की वसूली के लिए वरिष्ठ उप न्यायाधीश की अदालत में मुकदमा दायर किया। एक

पक्षीय डिक्री पारित की गई। सिविल कोर्ट के क्षेत्राधिकार के संबंध में तनकी विरचित की गई और किरायेदार के खिलाफ निर्णित की गई। आदेश 9 नियम 13 के तहत एक पक्षीय डिक्री को रद्द करने का आवेदन खारिज कर दिया गया। अपील पर इसकी पुष्टि की गई। उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया। जब मकान मालिक ने कब्जा प्राप्त करने के लिए डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन दायर किया, तो किरायेदार ने सीपीसी की धारा 47 के तहत यह कहते हुए आपत्ति जतायी कि सिविल कोर्ट का डिक्री अमान्य थी, क्योंकि प्रश्न में परिसर किराया अधिनियम द्वारा शासित था। किराया नियत्रंण अधिनियम के तहत किराया नियंत्रक अधिनियम में उल्लेखित शर्तों की पूर्ति पर बेदखली के दावों के लिए एक मात्र सक्षम मंच था। सिविल कोर्ट को संज्ञान लेने और किरायेदार को बेदखल करने की डिक्री पारित करने का अधिकार क्षेत्र से वंचित किया गया था। निष्पादन न्यायालय द्वारा आपत्ति खारिज की गई और उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया। किराएदार द्वारा एक रिट याचिका अनुच्छेद 227 पेश की जिसे भी खारिज किया गया। अनुच्छेद 227 के तहत याचिका को खारिज करने के खिलाफ इस न्यायालय में अपील दायर की गई थी। यह उल्लेख किया जा सकता है कि बेदखली के मुकदमे की सुनवाई करने के लिए सिविल अदालत के अधिकार क्षेत्र के संबंध में एक तनकी विरचित की गई थी व मकान मालिक के पक्ष में फैसला किया गया था। सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री के निष्पादन

में किरायेदार को भी कब्जे से वंचित कर दिया गया था। इस न्यायालय ने पिछले निर्णयों की संख्या का विस्तृत उल्लेख करने के बाद यह माना कि किराया अधिनियम के तहत किराए पर दी गई और शासित किसी इमारत को बेदखल करने का आदेश पारित करने वाला एक मात्र सक्षम प्राधिकारी किराया अधिनियम के तहत गठित किराया नियंत्रक है और सिविल कोर्ट का ऐसे प्रकरणों में संज्ञान लेने और उसमें निष्कासन का आदेश पारित करने के लिए अंतर्निहित क्षेत्राधिकार नहीं है। यह भी निर्णय दिया गया कि क्षेत्राधिकार नहीं होने वाले न्यायालय द्वारा पारित किए गए डिक्री के निष्पादन पर आपत्ति को निष्पादन की कार्यवाही में उठाया जा सकता है और डिक्री में दर्ज निष्कर्ष कि सिविल कोर्ट के पास अधिकार क्षेत्र है, रेसज्यूडिकेटा के रूप में लागू नहीं होगा। यह आगे देखा गया:

> "इस प्रकार यह स्थापित कानून है कि आम तौर पर पक्षकारान के अधिकारों की योग्यता के आधार पर निर्णय लेने के बाद सक्षम क्षेत्रधिकार वाली अदालत द्वारा पारित एक डिक्री, बाद के मुकदमे या कार्यवाही में पूर्व न्यायिक के रूप में कार्य करती है और पक्षकारान या अधिकार, स्वामित्व अथवा अपने हित का दावा करने वाले व्यक्तियों अथवा पक्षकारान को बाध्य करती है। इसकी वैधता पर केवल अपील या पुनरीक्षण, जैसा भी मामला हो, में चुनौती दी जानी चाहिए। बाद की कार्यवाही में इसकी वैधता पर

सवाल नहीं उठाया जा सकता है। किसी न्यायालय द्वारा विषय वस्तु पर या अन्य आधारों पर अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के अभाव में पारित डिक्री न्यायालय के अभ्यास अथवा क्षेत्राधिकार की जड तक जाती है। जो कि एक कोरम गैर न्यायिक न्याय है। ऐसे न्यायालय द्वारा पारित एक डिक्री शून्य व नॉन एस्ट है। इसकी अमान्यता स्थापित निष्पादन के चरण या संपार्श्विक कार्यवाही के चरण पर की जा सकती है जब इसे लागू करने की मांग की जाती है या अधिकार की नींव के रूप में कार्यवाही की जाती है। क्षेत्राधिकार का दोष अदालत के डिक्री पारित करने के अधिकार पर हमला करता है जिसे पार्टी की सहमति या छूट से ठीक नहीं किया जा सकता है...."[जोर दिया गया] [पैरा 26]

पैरा 27 में आगे कहा गया हैः

"कानून में इस स्थिति के प्रकाश में निर्धारण हेतु यह प्रश्न है कि क्या सिविल कोर्ट के आक्षेपित डिक्री को निष्पादन में अपीलकर्ताओं द्वारा चुनौती दी जा सकती है। यह पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि उक्त अधिनियम के तहत नियत्रंक के पास शहरी क्षेत्र में एक इमारत को मकान मालिक द्वारा पट्टे पर किराएदार को दी गई किराएदारी से

निस्कासन का आदेश दिए जाने का विशेष क्षेत्राधिकार है। जिसके चलते सिविल न्यायालय के पास ऐसेप्रकरणों को देखे जाने व निस्कासन की डिक्री पारित करने के क्षेत्राधिकार का अभाव है। इसलिए, हालांकि डिक्री पारित कर दी गयी थी और एक पक्षीय सुनवाई के दौरान तनकी संख्या-4 और 5 में अदालत के अधिकार क्षेत्र को देखा गया, उसके तहत डिक्री अमान्य है, और अपीलार्थी को बाध्य नहीं करती है। इसलिए, यह एक पूर्व न्यायिक के रूप में कार्य नहीं करता है। निचली अदालतों ने यह मानकर कानून की गंभीर गलती की है कि मुकदमें में डिक्री पूर्व न्यायिक के रूप में संचालित होती है और अपीलकर्ता निष्पादन के समय एक बार फिर वही मुद्दा नहीं उठा सकता है।'[जोर दिया गया]

अपील की अनुमति दी गई। चूंकि डिक्री के निष्पादन में कब्जा पहले ही ले लिया गया था, इसलिए न्यायालय ने किरायेदार को कब्जा बहाल करने का आदेश दिया और इस प्रकार देखाः

"यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए पार्टी के साथ हुए अन्याय से राहत तब देगा जब इस न्यायालय ने न्याय के गंभीर गर्भपात को देखा हो। अपीलकर्ता के लिए धारा 144 सीपीसी के तहत

सहायता लिया जाना हमेशा खुला है। इसलिए, यदि तथ्यों के आधार पर हम पाते हैं कि डिक्री अमान्य है व केवल डिक्री निष्पादित कर दी गई है, तो हम अमान्यता की डिक्री के तहत अवैध आदेशों को शून्य करने के लिए अनुच्छेद 136 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करने से इंकार नहीं कर सकते। तदनुसार अपील की अनुमति है। लेकिन परिस्थितियों में पक्षकार उन्हें अपनी लागत स्वयं वहन करने का निर्देश दिया गया है।"

इस निर्णय को बाद में शहरी सुधार ट्रस्ट बनाम गोकुल नारायण [1996] फोर एससीसी 178 में अपनाया गया। हमें इस न्यायालय के पहले के निर्णयों को उसी दृष्टिकोण को संदर्भित करने की आवश्यकता नहीं है जिसका उल्लेख सुशील कुमार मेहता (सुप्रा) में किया गया है।

वर्तमान मामले में अधिनियम की धारा 14 के लागू होने के कारण किरायेदार परिसर को बेदखल करने की डिक्री पारित करने का एकमात्र प्राधिकारी अधिनियम के तहत नियुक्त किराया नियंत्रक है और अधिनियम की धारा 50 विशेष रूप से सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को किसी भी मुकदमे या कार्यवाही पर विचार करने से बाधित करती है जो कि जहां तक दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम के अंतर्गत आने वाले परिसर से किसी किरायेदार को बेदखल करने से संबंधित है। सिविल न्यायालय के पास

मामले का संज्ञान लेने और एक डिक्री पारित करने का अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र नहीं था। निरर्थकता के आधार पर इस तरह के डिक्री को निष्पादन कार्यवाही सहित किसी भी बाद के चरण में चुनौती दी जा सकती है। इमारत की किरायेदारी एक विशेष अधिनियम द्वारा शासित थी और इसलिए सिविल कोर्ट द्वारा पारित डिक्री अमान्य थी और इसलिए निष्पादन योग्य नहीं थी। निर्णय-देनदारों द्वारा सिविल न्यायालय में अपना जवाब दावा पेश नहीं किया गया था जिसके चलते न्यायालय का क्षेत्राधिकार नहीं होने के संबंध में कोई तनकी विरचित नहीं की गई थी। किरायेदार ने इस अदालत में विशेष अनुमति याचिका में यह तर्क उठाया कि सिविल न्यायालय द्वारा पारित बेदखली आदेश को उनके खिलाफ निष्पादित नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय ने उस प्रश्न में जाने से इनकार कर दिया क्योंकि यह अपील के तहत आदेश का विषय नहीं था। यह निर्णय के दौरान देनदारों को उचित मंच के समक्ष उक्त आधार को उठाने की स्वतंत्रता यदि कानून के तहत उनके लिए उपलब्ध हो तो दी गई थी। एक मात्र मंच जहां निर्णय-देनदार डिक्री की निष्पादन क्षमता के संबंध में आपत्ति उठा सकते थे, वह निष्पादन कार्यवाही थी जो उन्होंने की थी। क्योंकि सिविल कोर्ट के क्षेत्राधिकार की वर्जित कर दिया गया था, जिसके चलते न्यायालय द्वारा पारित डिक्री अमान्य थी और निर्णय-देनदार ऐसी डिक्री की निष्पादनशीलता के संबंध में सफलतापूर्वक आपत्ति उठाने हेतु सक्षम थे। निष्पादन न्यायालय ने यह कहते हुए गलती की कि निर्णय-देनदार डिक्री की निष्पादन क्षमता

पर आपत्ति नहीं उठा सकते हैं क्योंकि अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के अभाव वाली अदालत द्वारा पारित डिक्री अमान्य थी। जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय ने कोई नया कानून नहीं बनाया, बल्कि केवल मौजूदा कानून की व्याख्या की जो लागू था। जैसा कि लिली थॉमस के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय द्वारा देखा गया था, एक प्रावधान की व्याख्या कानून की तारीख से ही संबंधित है और निर्णय से भावी रूप से लागू नहीं हो सकती है। जब अदालत यह निर्णय लेती है कि किसी विशेष प्रावधान की पहले दी गयी व्याख्या कानूनी नहीं थी, तो वह उस कानून को घोषित कर देती है जो उसके निर्णय के अनुसार शुरू से ही सही था। जियान देवी आनंद के मामले (सुप्रा) में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या कि वाणिज्यिक किरायेदारी वंशानुगत नहीं थी, गलत होने के कारण खारिज कर दी गयी थी। दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या कानूनी नहीं थी। इस न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या यह घोषित करती है कि वाणिज्यिक किराएदारी विरासत योग्य कानूनी होगी। चूंकि यह इस न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या के अनुसार शुरू से ही कायम थी। यह माना जाएगा कि कानून कभी भी अन्यथा नहीं था। इस न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या से सिविल न्यायालय को ऐसी डिक्री पारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। इस न्यायालय ने घोषणा की कि सिविल न्यायालय को ऐसी डिक्री पारित करने का कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं था। यह अधिकार क्षेत्र छीनने का सवाल नहीं था, यह इस न्यायालय द्वारा इस

आशय के कानून की घोषणा थी। जियान देवी आनंद के मामले में उच्च न्यायालय द्वारा दी गई व्याख्या के आधार पर सिविल न्यायालय ने क्षेत्राधिकार ग्रहण किया, जिसे न्यायालय ने रदद कर दिया।

उपरोक्त कारणों से अपील स्वीकार की जाती है। उच्च न्यायालय के साथ-साथ निष्पादन न्यायालय द्वारा सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री की निष्पादन योग्यता के संबंध में पारित आदेश को निरस्त किया जाता है। यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि निष्कासन की डिक्री पारित करने के सिविल न्यायालय की अधिकार क्षेत्र नहीं था। ऐसे न्यायालय द्वारा पारित डिक्री जिसका विषय वस्तु पर कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है शून्यता होगी और निर्णय-देनदार इसके निष्पादन पर आपत्ति कर सकता है। एच ऐसीडिक्री अमान्य और नॉन एस्ट है। इसकी अमान्यता कभी भी स्थापित की जा सकती है। जब इसे डिक्री के निष्पादन के चरण सहित किसी अन्य संपार्श्विक कार्यवाही सहित लागू करने की मांग की गई है। हम इस तथ्य के प्रति सचेत हैं कि यह प्रतिवादी-डिक्री धारक पर एक बड़ी कठिनाई होगी, जो सभी चरणों में जीतने के बाद भी अपने पक्ष में पारित डिक्री का लाभ नहीं उठा पाएगा, लेकिन कानून की अनियमितताओं से मदद नहीं मिल सकती है। तदनुसार, अपील स्वीकार की जाती है। उच्च न्यायालय और निष्पादन न्यायालय के आदेश रद्द किये जाते हैं। डिक्री धारक द्वारा प्राप्त डिक्री को अमान्य और नॉन एस्ट होने के कारण निष्पादित नहीं किया जा

सकता है। पार्टियों को अपनी लागत स्वयं वहन करने का निर्देश दिया जाता है। अपील की अनुमति है।

एन. जे.

अपील स्वीकृत

नोटः यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी विभा आर्य (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।